भाषा शिक्षण पर शिक्षकों का नज़रिया

रजनी द्विवेदी और शोभा शंकर नागदा

अक्सर शिक्षक चर्चा के दौरान बताते हैं कि कक्षा पाँच के बच्चे भी कहानी या कविता सुनाना, अपनी बात को बोलकर या लिखकर अभिव्यक्त करना, समझकर पढ़ना आदि काम नहीं कर पाते हैं।

ये सब बातें हमें सोचने को बाध्य करती हैं कि भाषा की कक्षा में ऐसा क्या होता है कि हमारे अथक प्रयासों के बावजूद बच्चों की विभिन्न भाषायी क्षमताएँ विकसित नहीं हो पातीं। सवाल यह है कि हम इसका कारण बच्चों की सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि को मानें अथवा भाषा सीखने-सिखाने के तौर-तरीकों व उसमें निहित हमारे नज़रिए को।

पिछले कुछ वर्षों में विभिन्न मौक़ों यथा कक्षा अवलोकन व प्रशिक्षणों के दौरान शिक्षकों के साथ हुई बातचीत में भाषा शिक्षण के प्रति उनके नज़रिए के कई आयाम उभरकर आए। उनमें से कुछ की चर्चा हमने यहाँ इस लेख में करने की कोशिश की है।

भाषा माने क्या

प्राय:शिक्षक 'भाषा माने क्या' का अर्थ बहुत सीमित अर्थों में लेते हैं। यह पूछे जाने पर कि भाषा से आप क्या समझते हैं जवाब होता है - भाषा यानी विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम अर्थात् 'सम्प्रेषण का साधन'। इस बात पर कभी ग़ौर नहीं किया जाता कि जिन विचारों को सम्प्रेषित करना है वे कहाँ से व कैसे आते हैं? दूसरे शब्दों में क्या भाषा के बग़ैर हम सोच सकते हैं? कल्पना कर सकते हैं? चीज़ों को अलग-अलग पहचान सकते हैं, उनका वर्गीकरण कर सकते हैं? विश्लेषण कर सकते हैं? हम भाषा का उपयोग कहाँ-कहाँ करते हैं? कैसे करते हैं? हमारा व भाषा का रिश्ता क्या है? यदि इन पहलुओं के बारे में गहराई से सोचा जाए तो यह सूची और लम्बी होती जाएगी।

उदाहरण के लिए यदि किसी नए व्यक्ति से मिलते हैं, उससे 4-5 मिनट बात करने के दौरान ही हमें पता चल जाता है कि अमुक व्यक्ति पंजाबी है, बंगाली अथवा गुजराती...। यानी इंसान के व्यक्तित्व, उसकी पहचान, उसकी क्षमताओं का विकास इत्यादि सभी बातें भाषा से जुड़ी हुई हैं।

इसका अर्थ यह है कि हममें से अधिकांश लोग जो मानते हैं कि भाषा यानी 'सम्प्रेषण का माध्यम', कुछ हद तक ही ठीक है। जाने-माने शिक्षाविद् कृष्णकुमार ने अपनी पुस्तक 'बच्चों की भाषा और अध्यापक' में कहा है: 'हममें से कई लोग भाषा को सम्प्रेषण का साधन मानने के इतने ज़्यादा आदी हो चुके हैं कि हम सोचने, महसूस करने और चीज़ों से जुड़ने के साधन के रूप में भाषा की उपयोगिता को अक्सर भूल जाते हैं। भाषा के उपयोग का यह बड़ा दायरा

उन लोगों के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण है जो छोटे बच्चों के साथ काम करना चाहते हैं। लेकिन भाषा का यह सीमित अर्थ भी कक्षा तक आते-आते कहीं गुम हो जाता है और उसे एक ऐसे विषय के रूप में पढ़ाया जाता है जिसके द्वारा बच्चों को नैतिक मूल्यों की शिक्षा दी जा सके।'

सम्प्रेषण के अर्थ के हिसाब से देखें तो भी कम-से-कम बच्चों को कक्षा में अपनी बात कहने, दूसरों की बात सुनने, प्रश्न उठाने, तर्क करने इत्यादि की स्वतंत्रता होनी चाहिए। पर कक्षाओं में तो यह नहीं होता। कक्षा में जो होता है वह है : अध्यापक जो कहे उसको बिना विचारे सुनना, पाठ्यपुस्तक के अध्यायों के पीछे दिए गए अभ्यास के प्रश्नों के 'सही' उत्तर याद करके उनको हूबहू परीक्षा में वैसा ही लिखना। इसके लिए तो पाठ्यपुस्तक की आवश्यकता ही नहीं होती। उत्तर याद करने के लिए बच्चे कुँजियों का सहारा लेते हैं और इसी वजह से कुँजियों का बाज़ार चलता है।

यह थी सम्प्रेषण की बात जो कि वास्तव में होती ही नहीं। तो बाकी अन्य पहलुओं का क्या हो यह हमें सोचना होगा।

इसी से सम्बन्धित दूसरा बिन्दु है भाषा सीखने-सिखाने के उद्देश्य व प्रक्रिया।

किसी भी विषय को सीखने-सिखाने के उद्देश्य सीधे इस बात से जुड़ते हैं कि हमारी उस विषय की समझ क्या है? विषय की समझ न केवल यह निश्वित करने में मदद करती है कि हमें पढ़ाना क्या है वरन यह भी निर्णय लेने में मदद करती है कि पढ़ाना कैसे है? चूँकि शिक्षकों की 'भाषा क्या है?' इस प्रश्न की समझ सीमित है, यही समझ भाषा शिक्षण के उद्देश्यों को निर्धारित करने में भी परिलक्षित होती है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि भाषा सीखने-सिखाने के उद्देश्य हैं :

- ध्वनि रूपों के शुद्ध उच्चारण को समझना।
- शब्दों के शुद्ध उच्चारण को समझना।
- ध्वनि रूपों का उच्चारण करना।
- शब्दों का शुद्ध उच्चारण करना।
- वर्ण पढ़ने की क्षमता विकसित करना।
- शब्द पढ़ने की क्षमता विकसित करना।
- वर्णों और शब्दों को उचित आकार, उचित क्रम में लिखने की क्षमता विकसित करना। (सुन्दर लिखावट)
- विराम चिह्नों का प्रयोग करते हुए लिखने की क्षमता विकसित करना।
- वाक्य पढ़ने की क्षमता विकसित करना।
- व्याकरण का सटीक उपयोग।
- और इनके साथ-साथ नैतिक मूल्यों का विकास करना भी भाषा शिक्षण का एक मुख्य उद्देश्य होता है।

पाठ्यपुस्तक निर्माण और भाषा सीखने-सिखाने के तौर-तरीके भी इन्हीं उद्देश्यों पर आधारित होते हैं। फलस्वरूप भाषा की कक्षा सिर्फ़ वर्ण, शब्द, वाक्य बोलना, पढ़ना, लिखना सिखाने पर केन्द्रित होकर रह जाती है। न तो उसमें कविताओं व कहानियों के लिए कोई स्थान होता है न बच्चों को बातचीत के मौक़े होते हैं और न अपनी बात को अभिव्यक्त करने के। चाहे वह मन से लिखना हो अथवा कहना।

भाषा तथा भाषा शिक्षण के उद्देश्यों को लेकर शिक्षकों के नज़रिए की बात हमने की। इसके अलावा भी कई दृष्टिकोण हैं जो शिक्षकों से बातचीत के दौरान परिलक्षित भी होते हैं, जैसे - भाषा टुकड़ों-टुकड़ों में व चरण-दर-चरण सीखी जाती है।

शिक्षक भाषा को एक समग्र रूप में देखने की बजाय टुकड़ों-टुकड़ों में देखते हैं। वे मानते हैं कि भाषा टुकड़ों-टुकड़ों को जोड़कर सीखी जाती है। चाहे ये टुकड़े फिर सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने के हों अथवा अक्षर, मात्रा, शब्द व वाक्य। यदि हम फिर से उद्देश्यों पर जाएँ और उनका गहराई से विश्लेषण करें तो उनमें भी यह विभाजन साफ़-साफ़ दिखाई देता है जैसे -

- पहले बच्चों को ध्वनियों का उच्चारण समझना सिखाना है।
- फिर साफ़ व स्पष्ट बोलना
- उसके बाद अक्षर व वर्ण पढ़ना और उसके बाद लिखना।

शिक्षकों के अनुसार भाषा सिखाने का तात्पर्य है; सुनना, बोलना, पढ़ने व लिखने का कौशल का विकास।

उनके अनुसार इन कौशलों के विकास की प्रक्रिया कुछ ऐसी होती है : यद्यपि बच्चा अपने आसपास हो रही बातचीत को सुनता रहता है लेकिन भाषा वह माँ से ही सीखता है। माँ बार-बार बच्चे को सुनाने के लिए बोलती है, जैसे - बोलो 'माँ', 'माँ' और बार-बार भी ध्वनि से परिचय होने के फलस्वरूप बच्चा 'माँ' शब्द सीख जाता है और 'माँ' बोलना शुरू करता है। इसी तरह उसको अन्य ध्वनियों पापा, दादा इत्यादि से परिचय करवाया जाता है। और फिर वह ये शब्द भी बोलने लगता है। ये शब्द छोटे व सरल होते हैं अत: बच्चा जल्दी सीख जाता है। फिर बारी आती है लम्बे व कठिन शब्दों व वाक्यों की। माता-पिता व रिश्तेदार बार-बार इन शब्दों को बच्चे के सामने दोहराते हैं। इसी तरह बच्चा शब्द व वाक्य बोलना सीख जाता है।

उनका यह दृढ़ विश्वास होता है कि बच्चा बगैर सुने नए शब्द व वाक्य बोल ही नहीं सकता। यानी पहले सुनने की प्रक्रिया होगी फिर बोलने की।

पढ़ने व लिखने की प्रक्रिया भी कुछ इस तरह ही होती है। पढ़ने का मतलब होता है अक्षरों को पहचानना और ध्वनियों का उच्चारण कर पाना। और इसीलिए बच्चे पढ़ने के नाम पर वर्णमाला को रटते रहते हैं, कविताओं व कहानियों को शब्दश: दोहराते रहते हैं।

लिखना भी एक स्वतंत्र कौशल की तरह मशीनी ढंग से सिखाया जाता है। बच्चों को अक्षरों की नक़ल के लिए कहा जाता है। शब्दों की नक़ल करवाई जाती है। सोचें, कि यदि हमें किसी एक ही काम को बार-बार करने को दिया जाए तो कैसा महसूस करेंगे। लेकिन शुरुआती एक साल में भाषा-शिक्षण के नाम पर बच्चे यही कवायद करते रहते हैं।

इन चारों कौशलों को अलग-अलग देखने की वजह से ही शिक्षण प्रक्रिया बोझिल, उबाऊ व बार-बार रटने वाली हो जाती है। जैसे यह सब एक-दूसरे से अलग-अलग प्रक्रियाएँ हों। इसी तरह क्या अक्षर व शब्दों को पढ़ना-सीखना लिखने की प्रक्रिया में कोई योगदान नहीं देता? इन प्रश्नों के बारे में कोई विचार नहीं करता। यदि पढ़ना व लिखना बच्चों के अनुभव व बातचीत से शुरू होगा तो वह बच्चों के लिए अर्थपूर्ण होगा।

शिक्षकों के अनुसार तो भाषा सीखने की प्रक्रिया कुछ इस तरह होती है : माता-पिता बोलते हैं मामा, पापा अथवा कोई अन्य शब्द, तो पहले बच्चे कई बार इस शब्द को सुनते हैं और फिर एक दिन बोलना शुरू करते हैं। इसी तरह वे एक-एक करके शब्द सीखते हैं और फिर शब्दों को मिलाकर वाक्य। भाषा को टुकड़ों-टुकड़ों में पढ़ाने का एक उदाहरण देखिए :

शिक्षक कक्षा में आए व बच्चों को डाँटकर चुप कराया। शिक्षक ने बोर्ड पर वर्णमाला के कुछ अक्षर यह बताने के लिए लिखे कि अक्षर से शब्द का निर्माण कैसे होता है और शब्द से वाक्य कैसे बनते हैं।
घ,र,च,ल,अ,ब,न,भ। घर,चल-घर चल
अ,म,न,घर,चल-चरण घर चल

उसके बाद शिक्षक ने बोर्ड पर लिखी वर्णमाला के अक्षर व अक्षर से बने शब्द और शब्द से बने वाक्यों को बच्चों द्‌वारा पढ़वाया। वह प्रत्येक बच्चे को बोर्ड पर बुलाते और बोर्ड पर लिखे हुए को पढ़वाते और साथ में अन्य बच्चों से उन शब्दों को दोहराते। इस प्रकार पीरियड चलता रहता है।

पूरी प्रक्रिया अक्षरों व शब्दों की पहचान पर ही केन्द्रित रहती है और इनकी पहचान पर इतना ज़ोर होने से वाक्य का अर्थ ही गुम हो जाता है।

उन बच्चों को जो कि अच्छी तरह से भाषा का प्रयोग कर सकते हैं ‘आ’,’इ’ व अन्य भी मात्राओं वाले नए-नए वाक्य जानते हैं और बनाते भी हैं, उनको इस तरह तोड़-तोडकर भाषा सिखाना कहाँ तक उचित है, और तो और इस नज़रिए का सीधा सम्बन्ध विषयवस्तु से भी होता है। पढ़ाने के लिए विषयवस्तु भी ऐसी ही चुननी होती है जो चरण-दर-चरण ही आगे बढ़े। फलस्वरूप विषयवस्तु सिर्फ अक्षरों, शब्दों जैसे पहले *कमल* फिर *कमला* फिर *कमली* और वाक्य *रतन घर चल, नल पर चल* सरपट करके इर्दगिर्द सिमटकर रह जाती है।

ऐसी विषयवस्तु, जो न तो बच्चों के अनुभवों से जुड़ी हुई है, जिसका न कोई अर्थ है न ही वह रुचिपूर्ण है आवश्यक है फिर भी बच्चे पढ़ते रहते हैं।

भाषा व बोली

एक और महत्त्वपूर्ण मसला है भाषा व बोली का। जिस भी मंच पर भाषा-शिक्षण की बात होती है, यह मसला ज़रूर उठता है। शिक्षक बच्चों द्वारा बोली जाने वाली भाषा को दूसरे दर्जे की समझते हैं क्योंकि उनका मानना है कि भाषा तो वह होती है जिसका अपना साहित्य व व्याकरण होता है, उसकी लिपि होती है, वह मानकीकृत व शुद्ध होती है। बच्चे जो भाषा अपने घर से लेकर आते हैं वह तो भाषा नहीं है क्योंकि वह तो एक क्षेत्र विशेष के लोगों द्वारा बोली जाती है, उसका न तो साहित्य है न व्याकरण न लिपि।

अत: स्कूल के पहले दिन से ही बच्चों को मानकीकृत और शुद्ध भाषा सिखाने का प्रयास किया जाता है। और यदि बच्चे अपनी घरेलू भाषा का प्रयोग विद्यालय में करते हैं तो उन्हें डाँट दिया जाता है। बच्चे यह समझ नहीं पाते कि उन्हें क्यों डाँटा जा रहा है?

घर में आसपास परिवेश में हर कहीं वही भाषा बोली जाती है पर स्कूल में अध्यापक के सामने जब वे बोलते हैं तो गलत क्यों हो जाते हैं। बात यहीं खत्म नहीं होती। जैसे कि हमने पहले भी बात की। भाषा व्यक्ति की संस्कृति व पहचान होती है। बच्चे द्वारा अपनी घरेलू भाषा का उपयोग न करने देना उसकी पहचान व संस्कृति पर सीधा प्रहार है। बार-बार डाँट खाने के कारण जो बच्चे इतनी बातचीत करते हैं, धीरे-धीरे बात करना ही बन्द कर देते हैं।

यदि भाषा-विज्ञान की दृष्टि से देखा जाए तो भाषा व बोली में कोई फ़र्क़ नहीं होता। भाषा का भी व्याकरण होता है, बोली का भी। यह बात ज़रूर है कि वह व्याकरण लिखित रूप में उपलब्ध नहीं होता। पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्याकरण होता ही नहीं। यही बात साहित्य पर भी लागू होती है। हो सकता है कि कई बोलियों (भाषाओं) में लिखित साहित्य न हो लेकिन मौखिक साहित्य ज़रूर होता है। दूसरा भोजपुरी, अवधी, मैथिली जिन्हें हम बोलियाँ कहते हैं उनमें तो बहुत साहित्य उपलब्ध है। भाषा का क्षेत्र विस्तृत है अथवा बोली का? - यह आप सोचिए कि हिन्दी भाषी लोग ज़्यादा हैं अथवा भोजपुरी। और जो भी लोग हिन्दी बोलते हैं वे कितनी शुद्ध हिन्दी बोलते हैं। और रही लिपि वाली बात तो दुनिया की किसी भी भाषा को किसी भी लिपि में लिख सकते हैं उदाहरण के लिए-

Ram Ghar Jata hai
राम घर जाता है

हिन्दी भाषा को आप रोमन लिपि में लिख सकते हैं। और आजकल तो मोबाइल, कम्प्यूटर सभी पर हम यही करते हैं। अँग्रेज़ी भाषा को आप देवनागरी में लिख सकते हैं।

राम इज़ गोइंग

Ram is going

अध्यापक यह मानते हैं कि एक भाषा दूसरी भाषा सीखने में बाधक होती है। उदाहरणार्थ यदि बच्चा मेवाड़ी (क्षेत्रीय भाषा) जानता है तो उसका नकारात्मक प्रभाव उसके हिन्दी (मानकीकृत भाषा) सीखने पर पड़ेगा। लेकिन होता इसका उल्टा है। भाषा शिक्षा के द्वारा हम बच्चे की जिन क्षमताओं को विकसित करना चाहते हैं यथा सोचने-विचारने, अपनी बात कहने, तर्क करने, विश्लेषण करने वह तो उनकी अपनी भाषा में आसानी से विकसित हो सकती है और फिर यह कौशल दूसरी भाषा में स्थानान्तरित किया जा सकता है। रही उच्चारण व मानकीकृत भाषा की बात तो उपयुक्त सन्दर्भ व वातावरण मिलने पर बच्चे स्वयं ही धीरे-धीरे यह सब सीख जाते हैं।

भाषा नक़ल से सीखी जाती है

शिक्षकों की एक और मान्यता है कि बच्चे भाषा तब सीखते हैं जब उन्हें वह भाषा सिखाई जाती है। ऐसी कक्षा का एक उदाहरण देखिए :

कक्षा-एक में बच्चे बैठे हुए हैं। प्रथम कालाँश लगता है। शिक्षिका कक्षा में आती है व कुर्सी पर बैठ जाती है। थोड़ी देर बाद बच्चों से कहती है चलो अपनी-अपनी स्लेट या कॉपी लेकर मेरे पास आओ। हम हिन्दी पढ़ेंगे।

बच्चे एक-एक करके अपनी स्लेट या कॉपी लेकर उनके पास जाते हैं। वह बच्चे की स्लेट पर 3-4 कॉलम बनाती हैं व एक कोने में 'अ' लिखकर बच्चे से कहती हैं ऐसे ही और बनाओ। इसी तरह वह कक्षा के सभी बच्चों को एक-एक वर्ण लिखने को देती हैं, जब बच्चे दिए गए वर्ण को लिख लेते हैं तो वह दूसरा वर्ण लिखने को देती हैं। इसी तरह कक्षा में कार्य चलता रहता है।

इस पूरे समय में एक बार कुछ ऐसा हुआ जो हटकर था। वह था बार-बार शिक्षिका द्वारा वर्ण लिखकर लाने को कहने पर एक बच्चे ने उनसे कहा मुझे नहीं लिखना है। कुछ और कराओ। लेकिन शिक्षिका के पास कुछ और कराने को नहीं था। अत: उन्होंने एक नया वर्ण फिर से बच्चे को लिखने के लिए दे दिया।

अब इस बात पर गौर करें कि भाषा सीखने की प्रक्रिया के दौरान बच्चे तुतलाते हैं। क्या हम उन्हें तुतलाना सिखाते हैं? वयस्क तो तुतलाकर बोलते नहीं ताकि बच्चों को उनकी नक़ल करने का मौका मिले व बच्चे वैसा बोलना सीखें। बच्चे नित नए शब्द व वाक्य बनाते हैं क्या हम प्रत्येक वाक्य को उनके सामने बोलते हैं? ताकि वे उसकी नक़ल कर सकें और सीख सकें। क्या हम कभी बच्चे को बोलते हैं, 'पापा मुझे मोटरसाइकिल पर घूमने जाना है।'
'पापा चॉकलेट खानी है।'

एक बच्ची व वयस्क की बातचीत का उदाहरण देखिए। मेरे दोस्त की बच्ची (तीन साल) व उसकी बुआ बातचीत कर रहे थे :

बुआ : बोलो, मैं अच्छी हूँ।
बच्ची : मैं अच्छी हूँ।
बुआ : मैं लड़की हूँ।
बच्ची : मैं लड़की हूँ।
बुआ : मैं गन्दी हूँ।
बच्ची : आप गन्दी हो।

अब आप ही सोचिए। इस बच्ची को कैसे पता चला कि उसे अपने-आप को गन्दा नहीं कहने के लिए वाक्य में कहाँ व क्या-क्या परिवर्तन करने होंगे? वह यह कहना कैसे सीखी होगी नक़ल से अथवा आपके बताने से अथवा...?

भाषा सिखाने का एकमात्र साधन पाठ्यपुस्तक है !

बच्चों को सिर्फ पाठ्यपुस्तक में दी गई विभिन्न रचनाओं को पढ़ना है और वह भी दिए गए क्रम में यानी पहले अध्याय एक की, फिर दो...तीन। बच्चे अपनी इच्छा से चुनकर पाठ भी नहीं पढ़ सकते। पाठ पढ़ने के बाद होता है उसके पीछे दिए गए प्रश्नों के उत्तरों को याद करना।

बच्चों के इर्द-गिर्द भाषायी सन्दर्भ उपलब्ध हैं। उदाहरण के तौर पर पत्रिकाओं, अख़बारों, विज्ञापनों में, सड़कों पर लिखे गए विभिन्न निर्देश इत्यादि। इनमें कई जगहों पर भाषा का प्रयोग होता है लेकिन इन पर किसी का ध्यान नहीं जाता।

इसके बाद आती है साहित्य की बात। भाषा के वृहद् साहित्य विशेषकर बच्चों की उम्र के लायक साहित्य से उनका कोई परिचय नहीं होता। कक्षा-कक्ष अवलोकन के दौरान एक अनुभव को यहाँ बाँटना चाहेंगे। हमने बच्चों से पूछा कहानी सुनोगे या कविता? उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया। अत: हमने एक कहानी सुना दी। दूसरे दिन फिर उसी कक्षा में जाने पर बच्चों ने कहा हमें कविता सुनाइए। कविता सुनाना शुरू किया तो उनका कहना था कल वाली सुनाइए। यह उदाहरण बताता है कि बच्चों को कहानियाँ और कविताएँ सुनने की बहुत इच्छा होती है। लेकिन क्योंकि हम साहित्य का कक्षा में अर्थपूर्ण उपयोग नहीं कर पाते हैं, अत: उनकी रुचि खत्म हो जाती है। बच्चों को विभिन्न कविताओं, कहानियों के मुख्य बिन्दुओं को याद करने का कार्य अरुचिकर व बोरिंग होता है और विशेषतौर पर तब जब यह उसके जैसा ही हो जो उनको पढ़ाया गया है। साहित्य के उद्देश्य जैसे कि खुद को समझना और खुद का दुनिया के बारे में दृष्टिकोण बनाना और उसका संवर्धन करना इत्यादि कहीं गुम हो जाते हैं।

कविता,कहानी की किताबें हो या अख़बार अथवा सड़कों, विभिन्न स्थानों पर लिखे गए निर्देश इस तरह के सन्दर्भ न तो कक्षा में उपलब्ध होते हैं न ही उनके बारे में सोचा जाता है। पाठ्यपुस्तक में कुछ ज़रूर मदद मिलती है लेकिन उसकी भी अपनी सीमाएँ होती हैं। अत:शिक्षक

को यह सोचना होगा कि बच्चों में भाषा के प्रयोग की क्षमताएँ बढ़ाने के लिए उन्हें पाठ्यपुस्तक के अतिरिक्त क्या-क्या करने की आवश्यकता है।

बच्चों की क्षमताओं में विश्वास

प्राय: शिक्षक यह मानते हैं कि बच्चों का सीखना स्कूल में ही प्रारम्भ होता है। स्कूल में आने से पहले बच्चों को कुछ नहीं आता। प्रशिक्षण के दौरान शिक्षकों से हुई बातचीत में उनका कहना था कि शहरी बच्चे तो फिर भी कुछ पढ़ना-लिखना जानते हैं लेकिन गाँव के बच्चे, गरीब बच्चे जिनके माता-पिता अनपढ़ हैं वे तो कुछ भी नहीं जानते। उन्हें तो सब कुछ स्कूल में आकर ही सीखना होता है।

असल में भाषा शिक्षण की कक्षाओं का उद्देश्य है कि बच्चे अपनी बात को कह सकें, दूसरे की बातों को सुनकर या पढ़कर अपनी टिप्पणी दे सकें। वे कहानियों और कविताओं को पढ़कर उसका रस ले सकें, उन कहानियों और कविताओं में अपनी छवि देख सकें या अपने आपसे जोड़ सकें। भाषा सिखाने के केन्द्र लिपि, वर्तनी, सुन्दर लिखाई व व्याकरण बन जाते हैं। इतना ही नहीं भाषा की कक्षा में भाषा से खेलने, उसमें डूबने, उसे अहसास करने और आत्मसात करने का अवसर ही नहीं रहता है। असल में बात यह है कि यह सब कुछ करने के लिए स्कूलों में इतना धैर्य कहाँ, वे तो जल्द-से-जल्द सिखाने में लगे रहते हैं। इसके अलावा शिक्षक का पूरा ध्यान कक्षा में बच्चों को शान्त करने और उच्चारण ठीक करने में रहता है। कक्षा-कक्ष में बच्चों को बातचीत करने से रोका जाता है। जबकि बच्चों की बातचीत कक्षा-कक्ष या अध्ययन-अध्यापन के लिए एक संसाधन बन सकता है। शिक्षक को यह अहसास ही नहीं है कि अगर बच्चों को छोटी-छोटी टोलियों में बाँटकर उन्हें किसी विषय-वस्तु पर बातचीत का अवसर दिया जाए तो उससे काफ़ी कुछ समस्या का समाधान ऐसे ही हो जाएगा। प्रत्येक बच्चा उसके परिवार में,उसके आसपास बोली जाने वाली भाषा के नियम सीख लेता है। चाहे वो नियम ध्वनि के हों,शब्द स्तर के हों अथवा बातचीत के। बच्चा केवल यह ही नहीं जानता है कि सही शब्द व वाक्य कैसे बोलना है बल्कि उसको यह भी पता होता है कि यदि प्रश्न वाक्य बनाना है तो उसे कहाँ लय में परिवर्तन करना पड़ेगा। वह जानता है कि उसे अपने पापा से किस तरह से बातचीत करनी चाहिए। और यदि घर में अतिथि आएँ तो उनसे बातचीत का तरीका क्या होगा। इसके साथ-साथ बच्चे यह भी जानते हैं कि यदि उन्हें किसी से कुछ माँगना है तो उस व्यक्ति से किसी तरह की बातचीत की आवश्यकता है। बच्चों को यह सब कौन सिखाता है?

हमें लगता है कि भाषा की कक्षा में भाषा सिखाते समय दो-तीन बातों को अमल में लाएँ तो ज़्यादा अच्छा होगा। पहली बात पढ़ने-लिखने की जो सामग्री हो वह सार्थक हो और बच्चे के स्तर की हो।

दूसरी बात यह है कि जो सामग्री दी जाए वह परिचित भाषा में हो। तीसरी बात शिक्षक बच्चों के साथ सार्थक संवाद करें। उनकी बातों को प्यार से सुनें और उसे लोगों की बातचीत सुनने का मौक़ा भी दें। ताकि वह अपने लिए कुछ व्याकरण के नियम और शब्द स्वयं से ढूँढ़ सके। आख़िरी बात यह है कि भाषा को अक्षर,उच्चारण,व्याकरण आदि में बाँटने से कोई मतलब नहीं

निकलता है। न ही ये सब किसी निश्चित क्रम में सीखे जा सकते हैं। भाषा सीखने का एक ही तरीक़ा है उसका ज़्यादा-से-ज़्यादा उपयोग किया जाए। जैसे-बोलने में, तर्क करने में, कल्पना करने में, सृजन करने में। पढ़ने-लिखने इत्यादि के पर्याप्त अवसर मिलें तो भाषा सीखना कोई मुश्किल काम नहीं है।

रजनी त्रिवेदी और शोभा शंकर नागदा पिछले लगभग क्रमश: 6 एवं 12 वर्षों से विद्याभवन शिक्षा सन्दर्भ केन्द्र उदयपुर में कार्यरत हैं। वे बिहार,छत्तीसगढ़, झारखण्ड तथा राजस्थान में वहाँ की पाठ्यपुस्तकों के निमार्ण के काम में तथा शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रमों से जुड़े रहे हैं। रजनी छत्तीसगढ़ में डी.एड पाठ्यक्रम विकसित करने में मदद करती रही हैं। शोभा शंकर का भी बच्चों के साथ काम करने एवं अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों से जुड़ाव का सघन अनुभव है। उनसे इन ई-मेल पतों पर सम्पर्क किया जा सकता है : rajni.dwivedi@azimpremjifoundation.org **तथा** shobha@vidyabhawan.org

(इस लेख का अँग्रेज़ी अनुवाद *Learning Curve, Issue XIII (Language Learning)* अक्टूबर, 2009 में What do Teacher's think of Language Teaching? शीर्षक से प्रकाशित हुआ है।)

सम्पादन : राजेश उत्साही